

INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES



ISSN 2277 – 9809 (online)

ISSN 2348 - 9359 (Print)

An Internationally Indexed Peer Reviewed & Refereed Journal

www.IRJMSH.com
www.isarasolutions.com

Published by iSaRa Solutions

प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था: एक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

डॉक्टर अन्जना कुमारी

शिक्षा स्नातक

एम०ए० - राजनीति विज्ञान एम० ए० - इतिहास

UGC NET JRF इतिहास

PhD

शोध सारांश: प्रकृति ने भारत को एक अलग भौगोलिक इकाई प्रदान की है। उत्तर में हिमालय पर्वत इसके प्रहरी के रूप में है तो पूर्व, पश्चिम व दक्षिण दिशा को हिन्द महासागर ने घेर कर इसे एक विशिष्ट क्षेत्र बनाया है। इसी कारण इसे भारतीय उपमहाद्वीप की संज्ञा भी दी गई है। इस प्राकृतिक प्रारूप के कारण भारत में एक स्वतंत्र व पृथक सभ्यता का विकास हुआ है। यहाँ मानव विकास के सभी चरणों की उपस्थिति दृष्टिगोचर होती है। इतना ही नहीं यहाँ पर विकसित संस्कृति विश्व की अपनी समकालीन नगरीय संस्कृतियों में विशिष्ट व उन्नत अवस्था में थी। वैदिक कालीन संस्कृति अपने स्वरूप में अपनी पूर्ववर्ती हड़प्पा संस्कृति से भिन्न होते हुए भी उसकी निरंतरता के तत्व लिए थी। वैदिक काल की जानकारी का मुख्य स्रोत वेद होने के कारण इसे वैदिक संस्कृति या सभ्यता कहा गया है। इस काल में सांस्कृतिक तत्वों की प्रधानता थी। इस शोध का उद्देश्य प्राचीन काल में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन करना है, जिसका एक बड़ा हिस्सा इसी वैदिक काल के अंतर्गत आता है।

प्राचीनकाल में शिक्षा व्यवस्था करना राज्य का दायित्व नहीं था। शिक्षा प्रदान करने का दायित्व ब्राह्मण वर्ग का था। परन्तु राज्य द्वारा व समाज के सभी वर्गों द्वारा शिक्षा व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालन के लिए सामर्थ्य अनुसार दान दिए जाते थे। भारतीय शिक्षा केंद्र अपनी श्रेष्ठता के कारण विश्व विख्यात थे। भारतीय छात्रों के साथ-साथ विदेशी छात्र भी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने के लिए दूर देशों से आते थे।

यह शोध पत्र प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था को समग्र रूप से प्रस्तुत करने का एक संक्षिप्त प्रयास है।

मुख्य शब्द (Keywords): प्राचीन शिक्षा, वैदिक काल, गुरुकुल, तक्षशिला, नालंदा, गुरु-शिष्य परंपरा, वेदांग, बौद्धाश्रम।

प्रस्तावना: मानव को अधिक परिपक्व, समझदार और प्रबुद्ध बनाने में शिक्षा की भूमिका हर युग में बेहद प्रभावी रही है, चाहे वह अनौपचारिक रूप में घर, बाहर या अपने आसपास के परिवेश में सीखे गए सबक हों या वैदिक कालीन वाचिक परंपरा से मकतब-मदरसे तक की औपचारिक शिक्षा पद्धतियों से मिली शिक्षा हो। निसंदेह शिक्षा का मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। तत्व चिंतन की शृंखला में प्रथम उपनिषदों में कहा गया "सा विद्या या विमुक्तये" (अर्थात् विद्या वही जो बंधनों से मुक्त करे) भी विद्या के महत्व को दृष्टिगोचर करता है।

दरअसल शिक्षा अपने अज्ञानता की प्रगतिशील खोज ही है। ज्यों-ज्यों हम ज्ञान के इस अथाह सागर में डुबकी लगाते हैं, इससे निकले अनुभव के मोती हमें इस बात का एहसास कराते हुए प्रतीत होते हैं। प्रसिद्ध तमिल संत तिरुवल्लुवर ने कहा है कि, "अभी मुट्ठी भर सीखा है, धरती भर बाकी है।" मानव भी जीवन के हर क्षेत्र में इसी तथ्य से दो-चार होते हुए विकास के अपने इस सतत क्रम में निरंतर शिक्षा के महत्व को समझता गया और ज्ञान-विज्ञान के नए-नए क्षेत्रों का शोध व अनुसंधानों के माध्यम से विकास करता गया। वैदिक व बौद्ध-जैन काल में हुई शैक्षिक प्रगति के इस क्रम का विकास मध्यकाल में विदेशों के सांस्कृतिक संपर्क से होते हुए आधुनिक नवजागरण तक पहुँच गया।

भारतीय भौगोलिक पृष्ठभूमि: भारत में शिक्षा व्यवस्था के इतिहास को जानने या समझने से पहले हमें भारत के इतिहास व भारतीय परिवेश के इतिहास को जानना आवश्यक है तथा इसकी भौगोलिक पृष्ठभूमि को समझना जरूरी है। प्रकृति ने भारत को एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई प्रदान की है। उत्तर में हिमालय पर्वत एक ऊँची दीवार के समान इसकी रक्षा करता रहा है तो दूसरी ओर हिन्द महासागर इस देश को पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण से घेरे हुए है। इन प्राकृतिक सीमाओं द्वारा बाह्य आक्रमणों से अधिकांशतः सुरक्षित रहने के कारण भारत देश अपनी एक सर्वथा स्वतंत्र तथा पृथक् सभ्यता का निर्माण कर सका है। भारतीय इतिहास पर यहाँ के भूगोल का गहरा प्रभाव पड़ा है। यहाँ के प्रत्येक क्षेत्र की अपनी अलग कहानी है। एक ओर ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं तो दूसरी ओर बृहद मैदान, एक ओर अत्यंत उपजाऊ प्रदेश तो एक ओर विशाल रेगिस्तान है। विभिन्न भौगोलिक दशाओं के कारण यहाँ प्राकृतिक व सामाजिक स्तर पर भी विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। ऐसी विषमता ही अन्यत्र कहीं मुश्किल ही दिखाई देती है। भारत का प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र एक विशिष्टता बनाए हुए है इतना ही नहीं देश की विशालता तथा विश्व के शेष भागों से इसकी पृथक्ता ने अनेक महत्वपूर्ण परिणाम उत्पन्न किए हैं। भारत के अपने आप में एक विशिष्ट भौगोलिक इकाई होने के कारण भारतीय शासकों और सेना नायकों ने देश के बाहर साम्राज्य विस्तृत करने तथा अपनी सैनिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करने का कभी कोई प्रयास नहीं किया, बल्कि उन्होंने अपने साम्राज्य का विस्तार भारत में ही किया। दक्षिण का चोल साम्राज्य इसका अपवाद रहा है।

भारतीय सांस्कृतिक परिवेश: अति प्राचीन समय से ही यहाँ भिन्न-भिन्न जाति, भाषा, धर्म, वेष-भूषा तथा आचार-विचार के लोग निवास करते हैं। परंतु इन बाह्य विभिन्नताओं के मध्य एकता दिखाई देती है, जिसकी कोई उपेक्षा नहीं कर सकता है। फलस्वरूप "विभिन्नता में एकता" भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता बन गई है। "भारतीय एकता की तुलना एक पिरामिड से की जा सकती है। यहाँ जीवन के भौतिक आधार में अंतर अधिक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता जाता है, परंतु अन्य क्षेत्रों में यह अंतर कम होता जाता है। अतः भारत की विविधता में मौलिक एकता है।"¹

भारतीय इतिहास में अति प्राचीन काल से ही हमें इस मौलिक एकता के दर्शन होते हैं। महाकाव्यों तथा पुराणों में इस संपूर्ण देश को भारत वर्ष अर्थात् भारत का देश तथा यहाँ के निवासियों को भारती (भारत की संतान) कहा गया है। विष्णु पुराण में स्पष्टतः इस एकता की अभिव्यक्ति हुई है—

"उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः॥"

अर्थात् समुद्र के उत्तर में तथा हिमालय के दक्षिण में जो स्थित है, वह भारत देश है तथा वहाँ की संतानें "भारती" हैं।² भारतीयों की प्राचीन धार्मिक भावनाओं एवं विश्वासों से भी इस सारभूत एकता का परिचय मिलता है। यहाँ की पवित्र नदियाँ, पर्वत व नगर देश के विभिन्न भागों में बसे हुए होने पर भी देश के सभी निवासियों के लिए समान रूप से श्रद्धेय रहे हैं। वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों का सर्वज्ञ सम्मान है तथा शिव, विष्णु आदि देवता सर्वत्र पूजे जाते हैं। यद्यपि यहाँ अनेक भाषाएँ हैं तथापि वे सभी संस्कृत से ही उद्भूत अथवा प्रभावित हैं। धर्मशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सामाजिक व्यवस्था भी सर्वत्र एक ही समान है। वर्णाश्रम, पुरुषार्थ आदि सभी समाजों के आदर्श रहे हैं। प्राचीन काल में जबकि आवागमन के साधनों का अभाव था, पर्यटक, धर्मोपदेशक, तीर्थयात्री विद्यार्थी आदि इस एकता को स्थापित करने में सहयोग प्रदान करते रहे हैं। राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञों के अनुष्ठान द्वारा चक्रवर्ती पद के आकांक्षी सम्राटों ने सदैव इस भावना को व्यक्त किया है कि भारत का विशाल भू-खंड एक है।

वस्तुतः भारतीय क्षेत्र में मानव सभ्यता के सभी चरणों (पुरापाषाण, मध्य पाषाण, नवपाषाण) की उपस्थिति दिखाई देती है। यहाँ पर आदि मानव से शुरू होकर सभ्य मानव तक ही संस्कृतियों की निरंतरता विद्यमान है। मध्यभारत की कंदराओं में पाषाणकालीन चित्रकला के अवशेष प्राप्त हुए हैं। पाषाणकालीन विभिन्न स्तरों से संबंधित औजारों की भारत के विभिन्न भागों से प्राप्ति हुई है। वहीं मेहरगढ़ से मानव के उत्पादक बनने के अर्थात् कृषि के प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं।

प्राचीन भारतीय सभ्यता

1. हड़प्पा सभ्यता का विकास

इतना ही नहीं बीसवीं सदी के प्रारंभ तक विद्वानों की यह धारणा थी कि वैदिक सभ्यता भारत की सर्व प्राचीन सभ्यता है, परंतु इस सदी के तृतीय दशक में इस भ्रामक धारणा का निवारण हुआ जब हड़प्पा सभ्यता के स्थलों की खोज हुई। इस सभ्यता के प्रकाश में आने से भारतीय इतिहास की प्राचीनता बढ़ गई तथा यह विश्वास हुआ कि भारत देश भी मेसोपोटामिया तथा मिस्र की सभ्यताओं के साथ ही अपनी एक स्वतंत्र सभ्यता का विकास कर रहा था। हड़प्पा संस्कृति का विस्तार जितने बड़े क्षेत्र हुआ था, उतने बड़े क्षेत्र में मिस्र व मेसोपोटामिया की सभ्यताओं का विस्तार नहीं हुआ था, मिस्र एवं मेसोपोटामिया के लगभग दुगुने क्षेत्र में हड़प्पा सभ्यता फैली हुई थी। यह हड़प्पा संस्कृति की एक विशिष्टता थी।³

हड़प्पा सभ्यता की एक बड़ी विशेषता थी कि यह मूलतः शांतिमूलक सभ्यता थी। राज्य में शांति और सुव्यवस्था इस संस्कृति के आर्थिक आधार को बनाए रखने के लिए आवश्यक थी। दरअसल सिंधुवासी भारत के विभिन्न भागों से तथा विदेशों से भी व्यापार करते थे। पुरातात्विक अन्वेषणों से सिंधु सभ्यता के व्यापार के प्रमाण मिलते हैं। मेसोपोटामिया, मिस्र, मध्य-एशिया के साथ सिंधु घाटी का व्यापारिक संबंध था।⁴

सिंधु सभ्यता के नगरीय चरण के पतन के बाद यह अपने ग्रामीण स्वरूप के साथ यहाँ विद्यमान रही। सिंधु सभ्यता के बाद वैदिक सभ्यता का स्वरूप इससे बिल्कुल अलग था, परंतु सिंधु सभ्यता के कुछ प्रभाव वैदिक युग के बाद भी देखे जा सकते हैं। मिट्टी के बर्तन, धातु का काम, लेखनकला, मूर्ति कला, चित्रकारी और नृत्य-संगीत की कला बाद

में भी भारत में विकसित हुई। सिंधु सभ्यता का सबसे गहरा प्रभाव धर्म के क्षेत्र में पड़ा। प्राकृतिक शक्तियों की पूजा बाद में भी भारतीय धर्म का प्रधान अंग बनी रही।

2. वैदिक सभ्यता

सैंधव संस्कृति के विनाश के पश्चात भारत में जिस नवीन सभ्यता का विकास हुआ उसे वैदिक सभ्यता के नाम से जाना जाता है। आर्यों का इतिहास हमें मुख्यतः वेदों से ज्ञात होता है जिसमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।⁵ ऋग्वैदिक संस्कृति की पृष्ठभूमि पर ही उत्तरवैदिक कालीन संस्कृति का विकास हुआ। इस काल का इतिहास हमें ऋग्वेद के आधार पर ही विकसित संहिता ग्रंथ, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदों से ज्ञात होता है। संहिताओं में सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद के नाम उल्लेखनीय हैं। ब्राह्मण, गद्य साहित्य में सर्वप्राचीन ग्रंथ हैं। उपनिषदों में हम वैदिक चिंतन का चरम विकास पाते हैं। इसी कारण इन्हें वेदांत कहा जाता है। इनका प्रमुख विषय आत्मविद्या है। इनकी रचना गंगा-घाटी में हुई थी।

3. बौद्धकालीन सभ्यता

छठी शताब्दी से चौथी शताब्दी ई० पू० के माध्यम तक भारतीय इतिहास में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं घटीं। एक तरफ इस युग में महाजनपदों का उदय हुआ, जिनमें राजतंत्र व गणतंत्र दोनों ही स्वरूप के राज्य विद्यमान थे। इनके उदय के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में बदलाव आया तो दूसरी तरफ धार्मिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय क्रांति हुई। जिसे धर्म सुधार आंदोलन कहा गया। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप पुरानी धार्मिक मान्यताएं बदल गईं और नए धर्मों का उदय हुआ।

दरअसल उत्तरवैदिक काल के उत्तरार्ध से ही धार्मिक कर्मकांडों एवं पुरोहितों के प्रभुत्व के विरुद्ध विरोध की भावना प्रकट होने लगी थी। इसका आरंभ उपनिषदों से हुआ। उपनिषदों ने ब्राह्मण, कर्मकांड, धर्म, यज्ञ, एवं बलि को निरर्थक बताया। इन्होंने वर्ण और धर्म की अपेक्षा कर्म को अहमियत दी, अध्यात्मवाद को कर्मकांड से अधिक महत्वपूर्ण माना गया।⁶ इन नई विचारधाराओं का समाज और धर्म पर गहरा प्रभाव पड़ा। जैन व बौद्ध धर्म उदय और विकास ने भारतीय इतिहास व संस्कृति को गहरे रूप से प्रभावित किया। इन नए संप्रदायों के नेताओं ने वेदवाद, ब्राह्मणवाद व जाति प्रथा पर प्रहार किया तथा साहित्य कला के क्षेत्र में धर्मों व संप्रदाय की बहुमूल्य देन है, इन्होंने लोक भाषाओं में ग्रंथों की रचना कर इन भाषाओं के विकास में योगदान दिया।

ये धर्म भारत के साथ-साथ विदेशों में भी लोकप्रिय हुए। इन धर्मों के माध्यम से भारतीय दर्शन व अध्यात्मवाद विदेशों में भी प्रचारित किया गया, जिससे विदेशी जिज्ञासु छात्र प्रभावित होकर यहाँ इनसे संबंधित ग्रंथों का अवलोकन करने के लिए समय-समय पर भारत आते रहे हैं जैसे फाह्यान, ह्वेनसांग, इत्सिंग आदि। जहां तक बात भारत में प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के विकास की है तो यहाँ शिक्षा का विकास भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार हुआ है।

प्राचीन भारत में धर्म और शिक्षा व्यवस्था का विकास

इस समय शिक्षा में धार्मिक क्षेत्र की प्रधानता थी। जीवन का चरम विकास मोक्ष प्राप्त करना था और मोक्ष धर्म की शिक्षा से ही प्राप्त हो सकता था। जीवन और संसार की क्षमता का अनुमान तथा मृत्यु एवं भौतिक सुखों की सारहीनता

के भाव ने उन्हें एक विशेष दृष्टिकोण प्रदान किया और दूध और वस्तुतः संपूर्ण शिक्षा परंपरा इन्हीं सिद्धांतों पर विकसित हुई।⁷ इतना ही नहीं उस समय शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिष्यों को गुरुओं के पास जाकर रहना पड़ता था, उपनयन संस्कार संपन्न होने पर ही विद्यार्थी जीवन का उत्पाद होता है। उपनयन के बाद ही वह ब्रह्मचारी कहलाता है।⁸

उपनयन संस्कार विद्यार्थी का द्वितीय जन्म माना जाता था जहां से गुरु के द्वारा दीक्षित होने पर उसका आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ होता है।⁹

इसी प्रकार विद्यार्थियों का जीवन निर्वाह के लिए तथा गुरु सेवा के लिए निमित्त भिक्षा प्राप्त करना भी मुख्यतः एक भारतीय परंपरा ही है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों को परामुखापेक्षी बनाना नहीं था और न ही यह समाज हित के प्रतिकूल ही समझा जाता था। वास्तव में भिक्षा प्रथा प्राचीन काल में विद्यार्थी जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। शतपथ ब्राह्मण में इसके शिक्षा महत्व को स्वीकार किया गया है। यह प्रथा विद्यार्थियों में त्याग व मानवीय गुणों का विकास करती थी। उसके अहंकार व उच्च होने के भाव का विनाश करके उसे व्यावहारिक जगत के सम्मुख ला खड़ा करती थी। समाज के संपर्क में आने से उसे वास्तविक जीवन का भी ज्ञान होता था, यह विद्यार्थियों के लिए स्वावलंबन तथा समाज के प्रति उसके कर्तव्य व कृतज्ञता का यथार्थ पाठ था।¹⁰ विद्यार्थी को प्रारंभ में वेद पाठन से अध्ययन आरंभ किया जाता था। अर्थात् अक्षर, शब्द, उच्चारण, छंद तथा प्रारंभिक व्याकरण का पूर्ण ज्ञान कराया जाता था। इन्हें वेदांग भी कहा जाता है। इसमें व्याकरण तथा शुद्ध उच्चारण का विशेष महत्व था क्योंकि इनकी शुद्धता पर ही वेदों की भावी शुद्धता निर्भर थी।¹¹ वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य महान था। इस समय व्यक्ति के विकास के सुअवसर प्राप्त थे। गुरु-शिष्य परंपरा के अनुसार दोनों के संबंध बेहद मधुर थे। एक सौहार्दपूर्ण माहौल में शिक्षा दी जाती थी। सदाचारी ब्रह्मचारी व गुरु-सेवक शिष्य में नैतिक मूल्यों का विकास स्वतः ही हो जाता था। इन सभी कारणों से ही शिक्षार्थी में आत्मबल भी भरपूर होता था जिस कारण वे कठोर परिश्रम कर स्वयं का सर्वांगीण विकास कर लेते थे।

वैदिक काल में स्त्री की शिक्षा का भी उचित प्रबंध था। स्त्रियों को भी विभिन्न विषयों की जिनमें गृह प्रबंधन व कला-संगीत, नृत्य प्रमुख थे, की शिक्षा दी जाती थी। स्त्री शिक्षा में वेदों का पाठ भी एक अनिवार्य अंग के रूप में शामिल था। स्त्री संतों को ऋषिका, ब्रह्मवादिनी कहकर पुकारा जाता था। रोमसा, लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, कद्रू, कामपानी, श्रद्धा, सावित्री, उर्वशी, सारंगा, देवयानी तथा मोपायना स्त्रियों के नाम चारों वेदों में मिलते हैं।¹²

उत्तर वैदिक कालीन शिक्षा

उत्तर वैदिक काल में शिक्षा क्षेत्र में प्रगति हुई। विद्यार्थियों के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक बना दिए गए, लेकिन शूद्र व स्त्री यह संस्कार नहीं कर सकते थे।¹³ अर्थात् इस काल में वर्ण व्यवस्था में अनेक जटिलताओं का समावेश हुआ, अब कर्म के स्थान पर वर्ण ही महत्वपूर्ण हो गया। महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा को नियंत्रित किया गया, उन्हें पूर्णतः पुरुषों के अधीन कर उनके राजनीतिक व धार्मिक अधिकारों को प्रतिबंधित किया गया। इतना ही नहीं उत्तर वैदिक युग में पुरोहितवाद का प्रभाव बहुत बढ़ गया था और यज्ञ संबंधी ज्ञान का अत्यंत विस्तार हो गया था, किंतु ऐसे जिज्ञासु

छात्र भी थे जो जीवन के बारे में रहस्यमयी दृष्टि रखते थे तथा ईश्वर, आत्मा, जन्म, मृत्यु, जीव, सृष्टि आदि गंभीर तत्वों पर चिंतन करते थे। ऋग्वैदिक कालीन शिक्षा में जहां शिष्य को सीधा ज्ञान दिया जाता था वहीं उत्तर वैदिक काल में शिष्य प्रमुख था व दोनों में प्रश्न-उत्तर होते थे। शिष्य भी प्रश्न कर अपनी शंकाओं का समाधान किया करते थे।¹⁴ इतना ही नहीं विद्या काल की समाप्ति पर गुरुजन विद्यार्थियों को दीक्षांत भाषण देते थे जो कि उनके भविष्य के लिए काफी उपयोगी होते थे। प्राचीन काल में भारत के इन गुरुओं के ये अंतिम उपदेश आधुनिक विश्वविद्यालयों के कन्वोकेशन एड्रेस के समान थे, अंतर केवल इतना प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में अंतिम उपदेश में छात्रों के धार्मिक व नैतिक रूप पर अधिक जोर दिया जाता था जबकि आधुनिक युग में बाह्य आडंबर तथा शुष्क प्रथा पालन पर।¹⁵ वस्तुतः प्राचीन काल में ऐसे ही व्यक्ति को गुरु पद के योग्य समझा जाता था जो कि स्वयं अपने विद्यार्थी जीवन में आदर्श रहे हों; जो व्यक्ति समाज व जाति का पथ प्रदर्शन कर सके अथवा जो पूर्ण विद्वान हो उन्हें शिक्षक पद मिलता था। योग्य शिष्य के पहुँचने पर उसे उचित ज्ञान देना प्रत्येक गुरु का कर्तव्य था। गुरु ही विद्यार्थी का आध्यात्मिक व मानसिक पिता होता था। गुरु का कर्तव्य शिष्य को अंधकार से प्रकाश में लाना था।

गुरुगृह, परिषद, सम्मेलन—इन तीन प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का प्रचलन था।¹⁶ चारों वर्णों की शिक्षा का पाठ्यक्रम भी अपने-अपने कर्मों के अनुसार था। प्रयाग, काशी, अयोध्या इत्यादि महान विद्या केंद्र थे। प्रयाग में उस समय का सर्वविख्यात आश्रम ऋषि भारद्वाज का था, जो कि उत्तरी भारत का एक वृहद केंद्र था। वैदिक काल के उपरांत महाजनपदों में सूत्रसाहित्य का विकास हुआ। इस समय तक 600 ई० पू० के लगभग ब्राह्मणीय शिक्षा पूर्णतः सुसंगठित हो चुकी थी। वेदों व उपनिषदों को संक्षिप्त रूप देने के लिए सूत्रों की रचना की गई जिसमें अध्ययन के प्रमुख विषय वेदांग थे। वेदों को समझने के लिए इन वेदांगों, शिक्षा, छंद, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष का पूर्व ज्ञान आवश्यक था। वास्तव में यह युग प्राचीन भारतीय शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण व रचनात्मक युग है।

शिक्षा दो भागों में विभक्त थी—प्रारंभिक और उच्च शिक्षा। प्रारंभिक शिक्षा में लिखना, पढ़ना और साधारण गणित का अध्ययन कराया जाता था। उच्च शिक्षा में धर्म, दर्शन, आयुर्वेद, सैनिक शिक्षा आदि सभी सम्मिलित थीं।¹⁷ सभी विधाओं की सैद्धांतिक व व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। आयुर्वेद व शल्य की व्यावहारिक शिक्षा का प्रबंधन कॉलेजों में था। जीवक का उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि करता है कि उसने सर्जरी की व्यावहारिक शिक्षा पाई थी। इसके अतिरिक्त प्रकृति निरीक्षण, कानून, सैनिक प्रशिक्षण भी पाठ्यवस्तु में सम्मिलित थे। तक्षशिला इन विद्याओं का प्रधान केंद्र था।¹⁸

बुद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था

इस युग में भी शिक्षा पद्धति की प्रधानता वही थी जो वैदिक काल में प्रचलित थी। दर्शन शास्त्र का चरम विकास सूत्र कालीन साहित्य की विशेषता है। इसी रूप में दर्शन की 6 शाखाएं विकसित हुई हैं:—

दर्शन	प्रवर्तक
सांख्य	कपिल

दर्शन	प्रवर्तक
योग	पतंजलि
न्याय	गौतम
वैशेषिक	कणाद
पूर्व मीमांसा	जैमिनी
उत्तर मीमांसा	बादरायण

इसी दार्शनिक विचारधारा का विकसित रूप हमें बौद्ध व जैन दार्शनिक परंपराओं में देखने को मिलता है। दरअसल बौद्ध व जैन धर्म को हिंदू धर्म से भिन्न रूप से नहीं देखा जाता है क्योंकि हिंदू धर्म में कुछ दोष आ जाने से इन धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। इनकी अधिकांश मान्यताएं हिंदू धर्म जैसी ही हैं। हिंदू वैदिक धर्म की भांति ही बौद्ध धर्म में भी विद्या आरंभ प्रवज्या संस्कार से होती थी।¹⁹ यह संस्कार 8 वर्ष के बालक को दिया जाता था। संघ में प्रवेश के लिए जाति भेद नहीं था। महात्मा बुद्ध का स्वयं ही कहना था कि जैसे नदियां समुद्र में विलीन होकर एक रस हो जाती हैं, उसी प्रकार सभी जातियां संघ में मिल गए एक रूप हो जाती हैं।²⁰ बौद्ध कालीन शिक्षा का चरम उद्देश्य निर्वाण प्राप्त करना था जिस कारण यह धर्म प्रधान थी। इस काल में स्त्री शिक्षा अच्छी थी, स्त्रियों ने अपनी प्रतिभा का भरपूर परिचय अपने उच्च शैक्षिक ज्ञान से कराया था; तथापि पर इस युग में केवल कुलीन परिवार की स्त्रियों को ही शिक्षा के वैदिक अवसर प्राप्त थे, जिस कारण निम्न वर्ग की स्त्रियां शिक्षा से वंचित थीं।²¹ संक्षेप में कह सकते हैं कि बौद्ध कालीन शिक्षा ने उच्च शिक्षा की शिलारोपण किया जिस पर आज भी हर भारतीय गर्व का अनुभव करता है।

प्रमुख शिक्षा केंद्र

दरअसल इस समय विश्व विख्यात शिक्षा केंद्रों का भारतीय पृष्ठभूमि पर विकास हो रहा था। यह शिक्षा केंद्र न केवल भारतीय विद्यार्थियों के लिए बल्कि विदेशी छात्रों को भी अध्ययन के लिए आकर्षित कर रहे थे। उस समय के शासकों ने भी इनके विकास में भरपूर सहयोग प्रदान कर इन्हें उच्च कोटि के शिक्षा केंद्रों के रूप में स्थापित किया। इन केंद्रों में कुछ प्रमुख शिक्षा केंद्र इस प्रकार हैं:—

- **तक्षशिला:** अत्यंत प्राचीन काल से तक्षशिला ब्राह्मणीय शिक्षा का केंद्र रहा था। बुद्ध काल में भी उत्तरी भारत में यह प्रमुख शिक्षा का केंद्र था। तक्षशिला गांधार प्रांत की राजधानी थी। रामायण में लिखा है कि राजा भरत ने इसे अपने पुत्र तक्ष के नाम पर बसाया था।²² तक्षशिला में कोई सुगठित कॉलेज या विश्वविद्यालय नहीं बना था, बल्कि इसमें अलग-अलगछोटे-छोटे गुरुकुल होते थे। इन गुरुकुलों में व्यक्तिगत रूप से विभिन्न विषयों के आचार्य विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान करते थे। तक्षशिला विश्वविद्यालय की स्थापना लगभग 2700 साल पहले की गई थी और इसमें लगभग 10500 विद्यार्थी

पढ़ाई करते थे।²³ यहाँ अलग-अलग देशों से छात्र आते थे। अनुशासन कठोर था। तक्षशिला में राजनीति और शास्त्र विद्या की शिक्षा के विश्वस्तरीय केंद्र थे। वहाँ के एक विद्यालय में 103 राजकुमार पढ़ते थे।

- नालंदा-विश्वविद्यालय:** यह प्राचीन भारत में उच्च शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण और विख्यात केंद्र था। यह विश्वविद्यालय वर्तमान बिहार के पटना शहर से 88.5 किलोमीटर दक्षिण-पूर्व और राजगीर से 11.5 किलोमीटर दूर स्थित था। इस महान विश्वविद्यालय के भग्नावशेष इसके प्राचीन वैभव की दास्तान बयां करते हैं।²⁴ सातवीं शताब्दी में भारत भ्रमण के लिए आए चीनी यात्री ह्वेनसांग व इत्सिंग के यात्रा विवरणों से इस विश्वविद्यालय के बारे में विस्तृत जानकारी मिलती है। यहाँ 10000 छात्रों को पढ़ाने के लिए 2000 शिक्षक थे। इसकी स्थापना का श्रेय गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम (450 से 470 ई०) को प्राप्त है। कुमारगुप्त ने यहाँ एक मठ बनवाया, इसके उपरांत के शासकों ने भी इसकी समृद्धि में अपना योगदान जारी रखा। इस विश्वविद्यालय को महान सम्राट हर्षवर्धन और पाल शासकों का भी संरक्षण मिला। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से ही नहीं बल्कि कोरिया, जापान, चीन, तिब्बत, इंडोनेशिया, पारस, तुर्की से भी विद्यार्थी यहाँ शिक्षा ग्रहण करने आते थे।²⁵ इतना ही नहीं यहाँ विद्यार्थियों व आचार्यों के अध्ययन के लिए 9 तल का एक विराट पुस्तकालय था जिसमें लाखों पुस्तकें थीं।
- विक्रमशिला विश्वविद्यालय:** इसकी स्थापना पाल वंश के राजा धर्मपाल ने की थी। आठवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी के अंत तक यह विश्वविद्यालय भारत के प्रमुख शिक्षा केंद्रों में से एक था। यह विश्वविद्यालय बिहार के भागलपुर शहर के पास था। ऐसा कहा जाता है कि यह उस समय नालंदा विश्वविद्यालय का सबसे बड़ा प्रतिद्वंद्वी था। यहाँ हजार विद्यार्थियों पर 100 शिक्षक थे।²⁶ यह तंत्र शास्त्र की पढ़ाई के लिए सबसे ज्यादा जाना जाता था। इस विषय का सबसे विख्यात विद्यार्थी अतीसा दीपंकर था जो कि बाद में तिब्बत जाकर बौद्ध हो गया।
- वल्लभी विश्वविद्यालय:** यह विश्वविद्यालय सौराष्ट्र (गुजरात) में स्थित था। छठी शताब्दी से लेकर 12वीं शताब्दी तक लगभग 600 साल इसकी प्रसिद्धि चरम पर थी। चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि यह विश्वविद्यालय 7वीं शताब्दी में गुणमती और स्थिरमती नाम की विद्याओं का सबसे मुख्य केंद्र था। यहाँ धर्मनिरपेक्ष विषयों की शिक्षा प्रसिद्ध थी।
- उदांत पूरी विश्वविद्यालय:** यह मगध यानी वर्तमान बिहार में स्थापित किया गया था। इसकी स्थापना पाल वंश के राजाओं ने की थी। आठवीं से 12वीं शताब्दी तक इसका विकास चरम पर था। यहाँ 12000 छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे थे।
- सोमपुरा विश्वविद्यालय:** इसकी स्थापना भी पाल राजाओं ने की थी। इसे सोमपुरा महाविहार के नाम से जाना जाता था। यह भव्य विश्वविद्यालय 27 एकड़ में फैला था। उस समय पूरे विश्व में बौद्ध धर्म की शिक्षा देने वाला यह सबसे अच्छा केंद्र था।

- **पुष्प गिरि विश्वविद्यालय:** यह वर्तमान भारत में उड़ीसा में स्थित था। इसकी स्थापना तीसरी शताब्दी में कलिंग राजाओं ने की थी। अगले 800 साल यानी 11 वीं शताब्दी तक इस विश्वविद्यालय का विकास अपने चरम पर था। इसका परिसर तीन पहाड़ों—ललित गिरि, रत्न गिरि तथा उदयगिरि पर फैला हुआ था। कुछ इतिहासकार मानते हैं कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना राजा अशोक ने करवाई थी।

इन प्रमुख विश्वविद्यालयों के अलावा अन्य विश्वविद्यालय भी अस्तित्व में थे जो देश के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित थे जैसे जगद्दल (पश्चिम बंगाल), नागार्जुन कोंडा (आंध्र प्रदेश), वाराणसी (उत्तर प्रदेश), कांचीपुरम (तमिलनाडु), मदियेत (कर्नाटक), शारदा पीठ (जम्मू-कश्मीर) आदि शिक्षण केंद्र भी शिक्षा प्रदान कर रहे थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रबंधन

इतना ही नहीं प्राचीन भारतीय शिक्षा में शुल्क प्रदान करने का कोई निश्चित नियम नहीं था। प्रायः शिक्षा निःशुल्क होती थी। शिक्षा प्रदान करना विद्वानों व पुरोहितों का पवित्र कर्तव्य समझा जाता था। जो शुल्क प्राप्त करने की अपेक्षा से शिक्षण कार्य करते थे उन्हें निंदा की दृष्टि से देखा जाता था। कालिदास ने ऐसे विद्वानों को ज्ञान का व्यवसायी कहा है।²⁷ इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि निर्धन बालक शिक्षा प्राप्त करने से वंचित न रह जाए। आचार्य के सामने आर्थिक संकट उत्पन्न ना हो इसके लिए शिष्यों व माता-पिता से यह अपेक्षा रखी जाती थी कि वह सामर्थ्य अनुसार कुछ दक्षिणा व उपहार आदि आचार्य को प्रदान करें।

राज्य व समाज का यह कर्तव्य था कि अध्ययन-अध्यापन करने वाले विद्वानों के निर्वाह की उचित व्यवस्था करें। इस उद्देश्य से शासक कुलीन लोग शिक्षण संस्थाओं को भूमि और धन आदि दान में देते थे। मौर्य काल में आचार्य व पुरोहितों को आर्थिक सहायता के रूप में ब्रह्मदेय भूमि प्रदान की जाती थी। गुप्त काल में ब्राह्मण विद्वानों को ग्राम दान में दिए जाते थे।

संदर्भ एवं पाद-टिप्पणियाँ (References & Footnotes)

1. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, *प्राचीन भारत*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 12-15।
2. *विष्णु पुराण*, द्वितीय अंश, अध्याय 3, श्लोक 1।
3. आर. एस. शर्मा, *प्राचीन भारत का इतिहास*, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, पृ. 45-48।
4. ए. एल. बाशम, *द वंडर दैट वॉज़ इंडिया*, रूपा एंड कंपनी, नई दिल्ली, पृ. 18-22।
5. डॉ. अल्तेकर, ए. एस., *प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 34।
6. रोमा चौधरी, *डॉक्ट्रिन्स ऑफ उपनिषद्*, कलकत्ता यूनिवर्सिटी, पृ. 88।
7. डॉ. अल्तेकर, ए. एस., *प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 56-58।
8. *शतपथ ब्राह्मण*, XI, 5, 4, 12।
9. *मनुस्मृति*, अध्याय 2, श्लोक 148।
10. *शतपथ ब्राह्मण*, XI, 3, 3, 5।
11. पी. वी. काणे, *धर्मशास्त्र का इतिहास*, भाग-1, भंडारक ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना, पृ. 102।

12. डॉ. रोमिला थापर, *भारत का इतिहास*, भाग-1, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 72।
13. *छान्दोग्य उपनिषद्*, V, 11, 1।
14. *बृहदारण्यक उपनिषद्*, III, 7, 1।
15. *तैत्तिरीय उपनिषद्*, शिक्षा वल्ली, अनुवाक 11 (दीक्षांत उपदेश)।
16. डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, *प्राचीन भारतीय शिक्षा*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 210।
17. आर. सी. मजूमदार, *प्राचीन भारत*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 154।
18. जॉन मार्शल, *टैक्सिला*, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, भाग 1, पृ. 40-42।
19. *महावग्ग*, I, 54, 1।
20. *अंगुत्तर निकाय*, भाग IV, पृ. 202।
21. आई. बी. हॉर्नर, *विमेन अंडर प्रिमिटिव बुद्धिज्म*, जॉर्ज रॉटलेज एंड संस, लंदन, पृ. 95।
22. *वाल्मीकि रामायण*, उत्तर काण्ड, सर्ग 101, श्लोक 10-11।
23. बी. सी. लॉ, *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल*, एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, पृ. 89।
24. एच. डी. सांकलिया, *द यूनिवर्सिटी ऑफ नालंदा*, पॉल एंड कंपनी, दिल्ली, पृ. 67-70।
25. सतीश चंद्र, *मध्यकालीन भारत*, एनसीईआरटी, पृ. 12।
26. डॉ. एस. दत्त, *बुद्धिस्ट मॉन्क्स एंड मोनेस्ट्रीज़ ऑफ इंडिया*, एलन एंड अनविन, लंदन, पृ. 312।
27. कालिदास, *मालविकाग्निमित्रम्*, प्रथम अंक, श्लोक 13 ("विद्यां वणिज्यां मन्यन्ते...")।



EARN YOUR

MBA

WWW.IIMPS.IN



Accreditation & Ranking



UGC / NCTE Approved.

INFO@IIMPS.IN

☎ 011-41005174

RESEARCH GATEWAY

STOP PLAGIARISM



Arogyam Ayurveda
Holistic Healing through herbs



AROGYAM ONLINE

PARIVARTAN PSYCHOLOGY CENTER

परिवर्तन

COLOR PSYCHOLOGY : HOW COLOR AFFECT YOUR CHILD



BLUE

Calms your Child's Mind & Body

YELLOW

Promotes Concentration, Stimulates the Memory

PINK

Evokes Empathy, makes your Child Calm

RED

Excites and energizes your Child's body

GREEN

Improves Reading speed and Comprehension

www.parivartan4u.com



परिवर्तन

Confuse about your children's future?

भारतीय भाषा, शिक्षा, साहित्य एवं शोध

ISSN 2321 – 9726

WWW.BHARTIYASHODH.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT SCIENCE & TECHNOLOGY**

ISSN – 2250 – 1959 (O) 2348 – 9367 (P)

WWW.IRJMSST.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
COMMERCE, ARTS AND SCIENCE**

ISSN 2319 – 9202

WWW.CASIRJ.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT SOCIOLOGY & HUMANITIES**

ISSN 2277 – 9809 (O) 2348 - 9359 (P)

WWW.IRJMSH.COM



**INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF SCIENCE
ENGINEERING AND TECHNOLOGY**

ISSN 2454-3195 (online)

WWW.RJSET.COM



**INTEGRATED RESEARCH JOURNAL OF
MANAGEMENT, SCIENCE AND INNOVATION**

ISSN 2582-5445

WWW.IRJMSI.COM



**JOURNAL OF LEGAL STUDIES, POLITICS
AND ECONOMICS RESEARCH**

WWW.JLPER.COM

JLPE